गीता की झलक

श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द

वशिष्ठ गुहा आश्रम
गूलर दोगी-२४९ ३०३
जिला टिहरी गढ़वाल (उ० प्र०)

गीता की झलक

(मूलः A Peep into the Gita)

श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द

द्वारा रचित

अनुवादक–
श्री यादवकृष्ण अवधिया एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) बी०टी०
प्राचार्य रा० उ० मा० शाला मर्रा (जिला दुर्ग) म० प्र० ।

श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट
वसिष्ट गुहा आश्रम
पो० गूलर दोगी, वाया शिवानन्द नगर
जिला टिहरी गढ़वाल (उ० प्र०)

प्रकाशक
स्वामी चैतन्यानन्द
श्री पुरुषोत्तमानन्द ट्रस्ट
वशिष्ठ गुहा आश्रम, गूलर दोगी-२४९ ३०३
जिला टिहरी गढ़वाल यू०पी० (हिमालय)

द्वितीय संस्करण, २०००

मुद्रकः-
सेमवाल प्रिटिंग प्रेस, ऋषिकेश

श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज

बुद्धिमानों में अग्रगण्य एवं त्यागी, विश्वविख्यात
महान स्वामी विवेकानन्द जी को
अत्यन्त श्रद्धाभक्ति पूर्वक
समर्पित

प्राक्कथन

सिद्धशिरोमणि, महायोगी श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज द्वारा लिखित "गीता की झलक" नामक पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर कर अपने श्रद्धालु भक्तों के सामने उपस्थित करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। प्रस्तुत पुस्तक "गीता की झलक" (A Peep in to the Geeta) पूज्य गुरुदेव १००८ श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज, संस्थापक वशिष्ठ गुहा आश्रम, गूलर के प्रवचनों का संग्रह है, जो कि उन्होंने एक बार श्रद्धालु भक्तों के आग्रह पर पंडित चान्दनारायण हरकौली सीतापुर के निवास पर दिया था।

पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द महाराज जी ने जनता को अनुद्योग, आलस्य एवं अकर्मण्यता के स्थान पर उद्योग, परिश्रम और कर्मण्यता का पाठ पढ़ाया एवं श्रीमद् भगवद्गीता के गूढ़ रहस्यों को अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा में समझाने का प्रयत्न किया। यह ऐसा अमूल्य रत्न है जिसे प्राप्त करके मनुष्य को कुछ और प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं रहेगी। पूज्य स्वामी जी की अमृतमयी वाणी से परिपूर्ण इस ग्रन्थ को पढ़कर पाठकों को सच्चे सुख एवं शान्ति की प्राप्ति होगी तथा उनके हृदय में दिव्य भावनायें उत्पन्न होंगी, ऐसी मेरी आशा है।

सर्वप्रथम इस पुस्तक को अंग्रेजी में श्री आई० के० टैमिनी, २४ पार्क रोड, इलाहाबाद ने तथा पुनः डा० ए० एन० श्रीवास्तव ३६ गोलागंज लखनऊ ने छपवाया था अब इस पुस्तक के हिन्दी रूपान्तर से श्रद्धालुओं की अभिलाषा पूरी होगी जो कई वर्षों से इसकी बाट जोह रहे थे।

इधर कई वर्षों से श्रद्धालुओं ने इस पुस्तक को हिन्दी में छपवाने के लिये मुझसे आग्रह किया तथा मेरी भी आकांक्षा रही है कि ऐसा अनमोल ग्रन्थ सामान्य पाठकों को भी सुलभ हो। अतः मेरी प्रेरणा से श्री यादवकृष्ण अवधिया एम० ए० प्रधानाचार्य रा० उ० मा० विद्यालय मर्रा (मध्य प्रदेश) ने इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद किया। अतः श्री यादवकृष्ण अवधिया का मैं हृदय से अनुग्रहीत हूं तथा उन्हें पूज्य गुरुदेव की ओर से शुभाशीर्वाद देता हूं।

इस पवित्र पुस्तक को छपवाने के लिये मैं पूज्य गुरुदेव महाराज की शिष्या श्रीमती श्यामकिशोर श्रीवास्तव बी० ए० को पूज्य गुरुदेव की ओर से शुभाशीर्वाद देता हूं तथा अपना आभार प्रदर्शित करता हूं।

श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव एडवोकेट के प्रति भी आभार प्रदर्शित करना मैं अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूं, जिन्होंने अपनी नन्दन प्रेस हरदोई में बड़ी सुन्दरता व स्वच्छता से छापकर यह पुस्तक तैयार की।

मुझे विश्वास है कि पाठक इस "गीता की झलक" नामक पुस्तक का गहन अध्ययन कर "निःस्वार्थ कर्म ही ईश्वर

पूजा है" इस महान सन्देश को प्रत्येक मानव तक पहुंचाकर पूज्य गुरुदेव महाराज की भावना को साकार रूप प्रदान करने में सहायक सिद्ध होंगे एवं अपनी आध्यात्मिक ज्ञान की भूख मिटाकर अवश्य आनन्द का अनुभव करेंगे।

स्वामी चैतन्यानन्द

वशिष्ठ गुहा आश्रम
पो० गूलर दोगी
वाया-शिवानन्द नगर
टिहरी गढ़वाल पिन- 249 303
उ० प्र०
(भारत)

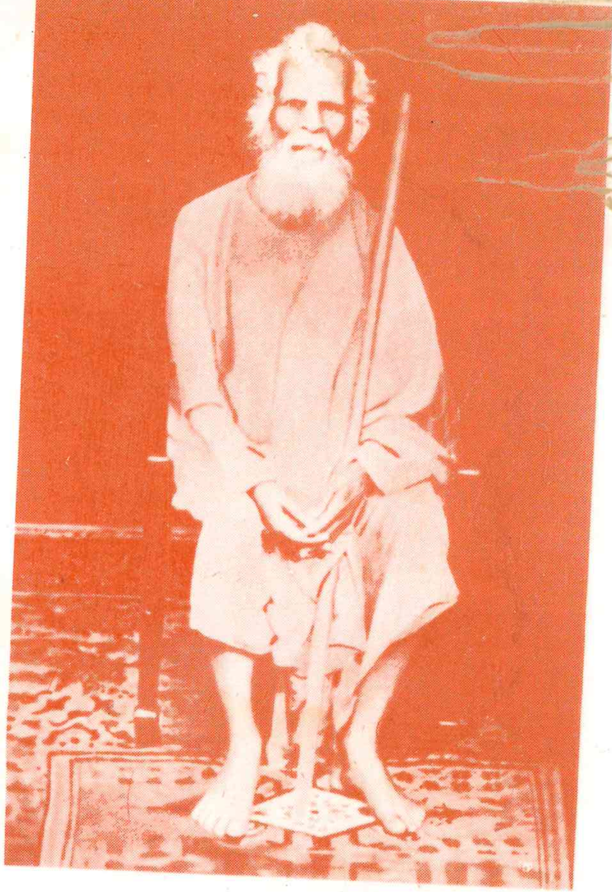

श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द महाराज

अनुक्रमणिका

सं०	वार्तालाप	पेज सं०
१.	गीता क्या है	१
२.	अर्जुन का विषाद	७
३.	कृष्ण सारथी	११
४.	ज्ञान योग	१६
५.	कर्म योग	२७
६.	कर्म योग क्रमगत	३३
७.	भक्ति योग	३६
८.	उपसंहार	४६

श्री मद्भागवत के अनन्य प्रेमी एवं गीता ज्ञान की सजीव प्रतिमा स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी द्वारा रचित यह लघु पुस्तक, गीता की उत्कृष्ट भूमिका प्रस्तुत करती है। इसके थोड़े से पृष्ठों में हिन्दू शास्त्रों में अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाने वाली पुस्तक गीता का निचोड़ दिया हुआ है। इससे पाठकों को निःसन्देह मूल पुस्तक "गीता" पढ़ने की एवं उसके उपदेशों पर चलने की प्रेरणा मिलेगी।

आई० के टोइम्नी
(I.K.Toimni)

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ।।

मैं उन श्रीकृष्ण जी को वारं वार प्रणाम करता हूं जो असीम एवं शाश्वत हैं, जिन्होंने निराकार एवं अजन्मा होते हुए भी भक्तों के लिये नामों तथा रूपों को स्वीकार किया है, जो वासुदेव, हरि, गोविन्द आदि अनेकों नामों से पुकारे जाते हैं एवं जो उन भक्तों के दुःखों एवं पीड़ाओं को क्षणमात्र में नष्ट करने वाले हैं, जो भक्त उनके चरणों में विनत होकर प्रणाम करने वाले हैं तथा जो उन्हें ही अपना एकमात्र गुरु, रक्षक एवं माता पिता मानते हैं।

प्रथम प्रवचन

गीता क्या है ?

गीता से मेरा तात्पर्य अद्भुत एवं दिव्य-गीत, श्रीमद्भगवद्गीता से है, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मित्र एवं प्रशंसक अर्जुन को कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरवों एवं पाण्डवों के महाभारत युद्ध के अवसर पर सुनाया था। तथापि यह केवल अर्जुन के लिये ही नहीं है, अपितु यह देश, जाति एवं वर्ग से परे है एवं सम्पूर्ण मानव जाति के लिये हैं; क्योंकि इसमें मानव जाति की मूलभूत समस्याओं पर तथा विशेषतः जीव को आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति कराके भवबन्धन से मुक्त कराने वाले उपायों पर अत्यन्त विशदरूप से विचार किया गया है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।

सभी उपनिषदें गायों के तुल्य हैं। गायों को दुहने वाले को उस कार्य में निपुण होना ही चाहिये, यहाँ उपनिषद रूपी गायों को दुहने वाले स्वयं श्रीकृष्ण जी हैं, जो ग्वाले हैं, नंद के पुत्र हैं एवं गायों के संरक्षक हैं। अर्जुन ही बछड़ा है। वास्तव में दूध पीने वाले एवं उसका आनन्द उठाने वाले बुद्धिमान एवं भाग्यशाली लोग हैं, क्योंकि यहाँ दूध उस अमृत के अतिरिक्त और कुछ नही है, जो लाखों मरणासन्न लोगों को सच्चा जीवन प्रदान करता है। मैं कहता हूं कि यह गीता अमृतमयी है। यदि तुम सही भाव से इसके समीप आओगे, तो तुम्हे शान्ति, बल, क्रियाशीलता बुद्धि एवं जीवन की प्राप्ति होगी। हमारे महापुरुषों ने अपने धनीभूत एवं पंजीकृत अनुभवों को गीता में स्फटिक मणि की तरह स्पष्ट शब्दों में संग्रहीत किया है।

गीता उन सभी लोगों के लिये स्वास्थ्यप्रद सुरक्षित विश्रान्तिस्थल है जो उपद्रवों, प्रलोभनों, बेचैनी, चिन्ताओं, भय, आलस्य, अज्ञान, घमंड, दम्भ, अभिमान, ईर्ष्या, दुर्बलता, कट्टरता एवं संकीर्णता के वशीभूत हो चुके हैं। गीता की निर्मल ज्ञान-गंगा में एक बार गोता लगाने का भी अमिट प्रभाव पड़ता है। गीता कोई छोटा तालाब नहीं है, जिसमें स्नान करने के लिये केवल एक ही घाट हो। यह एक विशाल सरोवर है, जो अमृतमय जल से परिपूर्ण है, जिसमें अनेकों घाट हैं, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार गोता लगाकर लाभ उठा सकता है। यह एक सार्वभौमिक शास्त्र है, जो किसी भी व्यक्ति के लिये

वर्जित नही है, अपितु जो प्रत्येक का स्वागत करता है। आइये, आइये और आनन्द उठाइये। एक माता की कई सन्तानें होती हैं, जिनके स्वभाव एवं रुचियाँ भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं वह प्रत्येक को वही भोजन देती हैं, जो उसके स्वास्थ्य के लिये सबसे अधिक हितकारी हो। इसी प्रकार गीता सभी की स्नेहमयी माता है, जो प्रत्येक को पर्याप्त आध्यात्मिक भोजन प्रदान करती है, चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक, कर्मी हो या ज्ञानी, योगी हो या दार्शनिक, सगुण उपासक हो या निर्गुण उपासक, विद्वान हो या मूर्ख। आवश्यकता केवल इसी बात की है कि हम सही भाव से उसका अनुशीलन करें।

अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते।

हे मेरी प्यारी माता ! मै सदैव तुम्हारी अर्चना करता हूं तथा श्रद्धापूर्वक तुम्हे नमस्कार करता हूँ।

निःसन्देह हमें अपनी उदार गीता माता पर गर्व करना चाहिये, जो हमें अत्यधिक मात्रा में हमारी वांछित वस्तुएं प्रदान करती हैं। परन्तु अत्यन्त परिचय से अवज्ञा होती है। हम अपने पास के खजानों से अनभिज्ञ होते हैं। हम अपने पास के खजानों से अनभिज्ञ थे। हमने पूर्णतया उनकी उपेक्षा की। राजा राममोहनराय, स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी रामतीर्थ के आने के बाद ही हमारी आँखें खुलीं। विदेशियों ने अदम्य उत्साह से हमारे धर्म का अध्ययन किया और वे उसकी महानता से विस्मयाभिभूत हो गये। फिर भी हम इतने अधःपतित तथा दासता की भावनाओं से इतने ग्रसित हो गये थे कि हम तब तक किसी वस्तु की महानता को स्वीकार नहीं करते थे, जब

तक कि वह विदेशी लिबास में हमारे सामने न आवे।

मेरा उद्देश्य आप लोगों के समक्ष गीता के गौरव-शाली संदेश का कुछ अंश प्रस्तुत करना है। मुझे आशा है कि मेरे इस प्रयास से आप सबों के मन में गीता को ओर भी अधिक अच्छी तरह समझने की इच्छा उत्पन्न होगी, जिससे आप अपनी ही भलाई के लिये तथा सबके कल्याण के लिये अपने जीवन को ढाल सकेंगे। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।

गीता का मुख्य राग है "त्याग"। मै आपको बता चुका हूं कि गीता में उपनिषदों का सार संनिहित है तथा उसे भली भाँति समझने के लिये उपनिषदों का कुछ ज्ञान अपेक्षित है। श्रुति कहती है "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।" कोई भी व्यक्ति केवल कर्म, संतान या धन के द्वारा अमरता नहीं प्राप्त कर सकता। त्याग में और केवल त्याग में ही मोक्ष का निवास है। यह त्याग बाहरी नहीं है। इस बिन्दु पर मैं बाद में प्रकाश डालूंगा। यहाँ रहने वाला व्यक्ति इसका अभ्यास कर सकता है। आप केवल इसी विचारधारा में मत बह जाइये कि यह केवल उन महात्माओं और साधुओं की ही चीज है, जिन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों को छोड़ दिया है एवं घने जंगलों का आश्रय लिया है, वह सही अर्थों में त्यागी हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। महारानी चूडाला के पति राजा शिखिध्वज ने अपने विशाल राज्य को तथा अपनी प्रिय पत्नी का परित्याग कर दिया और अपने आप को त्यागी मानते हुए घने जंगलों का सहारा लिया। परन्तु उनकी बुद्धिमती पत्नी ने उन्हें त्याग का सिद्धान्त पढ़ाया एवं उन्हें पूर्ण

त्याग की भावना रखने वाला, एक विशाल राज्य का शासक बनाया। महान राजा जनक भी एक विशाल साम्राज्य के शासक थे। उन्हीं के पास श्री व्यास जी ने अपने पुत्र श्री शुकदेव जी को आत्मविद्या पढ़ने के लिये भेजा।

मैं आप को बता चुका हूं कि गीता का मुख्य राग है त्याग और मैं उस पर पुनः यथास्थान आवश्यकतानुसार प्रकाश डालूंगा, परन्तु गीता एक मंत्र भी है। मंत्र होते हैं कुछ अक्षर या प्रतीक या कविताएँ, जिनमें महान शक्ति छिपी रहती हैं। (पहले हमें ऋषियों या सत्यसंकल्पों को जानना होगा।) किसी लक्ष्य को सामने रखकर ही वेदों एवं पुराणों की रचना की गई है। यद्यपि हम गीता का सम्पूर्ण अर्थ समझे बिना ही उसका पाठ करें, तथापि अन्ततोगत्वा हमें लाभ ही होगा। शब्दों के रूप होते हैं। नाम और नामी अभिन्न हैं। नाम की सहायता लेने पर नामी को प्रकट होना ही पड़ता है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि सच्चे उत्साह एवं लगन से गीता का पाठ करते रहने से कभी न कभी सर्वशक्तिमान भगवान को अपने भक्तों के सामने प्रकट होना ही पड़ता है।

एक बार एक सीधा-सादा अनपढ़ व्यक्ति किसी पंडित से गीता-पाठ सुन रहा था। कई श्रोता थे परन्तु यह अनपढ़ व्यक्ति सर्वाधिक प्रभावित हुआ। उसके कपोलों पर आनन्दश्रु विगलित होने लगे। जब उससे इस आह्लाद का कारण पूछा गया, तो उसने उत्तर दिया "मित्रों मैं पंडित जी के शब्दों को नहीं समझता, परन्तु मैं केवल यह जानता हूं कि वह श्री मद्भगवद्गीता पढ़ रहा हैं, जिसकी शिक्षा श्री भगवान ने दी

थी। मैं श्रीकृष्ण के मनोहर स्वरूप का ध्यान करता हूं एवं उस आनन्दातिरेक में सब कुछ भूल जाता हूं।"

इसलिये हमें गीता का अध्ययन, भक्ति, लगन, नम्रता तथा विश्वास पूर्वक करना चाहिए। तभी गीता अपने रहस्यों का उद्घाटन करेगी एवं हमें महामानव बनायेगी।

भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
गीतागंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

गीता महाभारत का निचोड़ है। जो व्यक्ति श्री विष्णु के मुख से निकली हुई इस गीतामृत-रूपी पवित्र गंगा-जल का पान करता है, वह जन्म और मृत्यु से छूट जाता ह। वह सदा के लिये सुरक्षित एवं मुक्त हो जाता है।

✣

द्वितीय प्रवचन

अर्जुन का विषाद

आज हम कुरुक्षेत्र के महान युद्धस्थल पर चलेंगे और देखेंगे कि वहाँ क्या हो रहा है? युद्ध के लिये पांडव और कौरव सेनायें व्यूहबद्ध होकर खड़ी हैं। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी हैं। अर्जुन की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण जी रथ को। (जिसमें चार श्वेत अश्व जुते हैं) दोनों सेनाओं के मध्य ले जाते है। (चारों ओर देखने पर) अर्जुन को ज्ञान होता है कि शत्रुओं की सेना समुद्र की तरह फैली हुई है, जबकि उसकी स्वयं की सेना छोटी तथा अपेक्षाकृत सीमित है। उसका प्रथम सन्देह है कि इस महान सेना पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है। फिर वह बड़े-बड़े लोगों की कतार देखता है, जिसमें उसके स्वयं के पितामह भीष्म, उसके गुरु अद्वितीय द्रोण, शक्तिशाली एवं स्वामिभक्त कर्ण तथा अन्य कई शूरवीर, उसके परम शत्रु दुर्योधन के लिये अपने प्राणों का बलिदान करने के लिये तत्पर खड़े हैं। यह सत्य है कि उसके साथ श्रीकृष्ण जी हैं, जो पलक मारते ही सम्पूर्ण विश्व की रचना या विनाश कर सकते हैं। तथापि, वह नहीं जानता------वह सब कुछ भूल जाता है। वह भय से अभिभूत हो जाता है। पहले उसने केवल सन्देह किया था। अब वह निराश एवं खिन्न हो गया है।

'शरीरं रथमेव तु' शरीर वास्तव में रथ ही है। इस गूढ़ वाक्य का अर्थ गुप्त है, परन्तु हे साधक आत्मा! तुम्हे उसमें गुप्त अर्थ को खोज निकालना है। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व।

और याद रखो, तुम उसे बिना तपस्या के नहीं समझ सकते। समझने का अर्थ तोते या रिकार्ड की तरह किसी चीज को फिर से सुनाना नहीं है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इसका अर्थ है किसी विशिष्ट विचार को अपना बना लेना। यदि हमें इस तथ्य का साक्षात्कार हो जाय कि इस शरीर में रहने वाला, इस शरीर से नितान्त भिन्न है और वह दैहिक तथा भौतिक वस्तुओं से अभिभूत नहीं होता, तो हम सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं और यदि हम इसका सर्वोत्तम उपयोग नहीं करते तो यह किसका दोष है।

अब हम अर्जुन की ओर लौटेंगे। वह निराश हो गया है। वह युद्ध करना नही चाहता। उसमें स्वाभिमान है। अभी तक उसे असफलता नहीं मिली है, अब वह अपकीर्ति एवं लज्जा में नहीं पड़ना चाहता। मानो, इन्हीं विचारों की पुष्टि के लिये उसके मन में गुरुजन-सम्बन्धी विचार उठते हैं। वह तब तक विजय नहीं प्राप्त कर सकता है, जब तक कि वह अपने पितामह भीष्म, आचार्य, द्रोण एवं इसी कोटि के अन्य पूज्य महानुभावों से आमने-सामने होकर युद्ध न करे।

तुम अवश्य ही यह जानते हो कि इस विचार ने पहले कभी भी उसके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं किया था। जब भीष्म और द्रोण के नेतृत्व में कौरवों ने गौओं के हरण के उद्देश्य से विराट के पुत्र उत्तर के सारथी के रूप में अर्जुन को भीष्म और द्रोण से युद्ध करना पड़ा था। उस समय गुरुभाव ने उसे पीड़ा नहीं पहुंचाई थी। इसके अतिरिक्त, उसे पूरी तरह से ज्ञात था कि उसे अपने गुरुजनों से युद्ध करना पड़ेगा। वह कोई

अप्रत्याशित घटना नहीं थी। वास्तविकता यह थी कि जब उसने कौरवों की विशाल सेना देखी, तब वह अपना संतुलन खो बैठा और वह त्याग का आश्रय लेने का प्रयास करने लगा, जो सर्वथा मिथ्या था।

हम देखें, अर्जुन क्या कहता है, "हे भगवान ! अपने ही सगे सम्बन्धियों के लिए एकत्रित देखकर मेरा शरीर कांप रहा है। मैं अपना गांडीव धनुष पकड़ने में असमर्थ हूं मैं खड़ा नहीं हो सकता, मेरा मन चक्कर खा रहा है। मैं देख रहा हूं कि शकुन भी मेरे विपरीत ही हैं। अपने स्वार्थ के सगे सम्बन्धियों को युद्ध में मारने से मुझे क्या लाभ होगा ? हे कृष्ण मैं विजय नहीं चाहता, मुझे राज्य की भी कामना नहीं है और न ही राज्य से होने वाले भोग चाहता हूं। हे गोविन्द ! हमारे लिये राज्य, संपत्ति या हमारे अस्तित्व का ही क्या उपयोग है? सम्पूर्ण सम्पत्ति तथा प्राणों का मोह त्याग कर हमारे सभी मित्र एवं सम्बन्धी खड़े हैं- वे हैं आचार्य, पालक, पुत्र, पौत्र, पितामह, चाचा, ससुर, साले एवं अन्य सगे सम्बन्धी। हे मधुसूदन ! मैं उन लोगों को, तीनों लोकों के राज्य के लिए भी. मारने के लिए तैयार नही हूं- फिर इस तुच्छ राज्य के लिए तो कहना ही क्या है? हे जनार्दन ! हम धृतराष्ट्र के पुत्रों को, जो हमारे ही सगे-सम्बन्धी हैं, मारकर कैसे सुखी हो सकते हैं? निःसंदेह वह लोग, क्रूरता, विश्वासघात एवं शोक आदि से परिपूर्ण हैं, तथापि यदि हम अपने ही सगे सम्बन्धियों को मारते हैं, तो यह हमारी बड़ी भारी भूल होगी। हमें उनको मारने का कोई अधिकार नहीं है। हे माधव ! मुझे बताइये कि हम अपने ही बन्धु-बान्धवों को मारकर किस प्रकार सुखी हो सकते हैं?

यद्यपि लोभ से अन्धे-अन्तःकरण वाले ये लोग इस तथ्य को नहीं समझ पा रहे हैं कि अपने परिवार का विनाश करने में तथा अपने ही सगे सम्बन्धियों को कष्ट एवं क्षति पहुंचाने के क्या पाप-परिपूर्ण होंगे, तथापि हम लोगों को, जो सम्पूर्ण परिवार के विनाश से होने वाली हानि को देख रहे हैं, वही पाप करने से क्यों नहीं अलग हो जाना चाहिए? परिवार के विनाश से परिवार की परंपराएं भी लुप्त हो जावेंगी। जब परंपराएं लुप्त हो जावेंगी, तब अधर्म का बोलबाला हो जावेगा, परिवार की सभी स्त्रियां दूषित हो जावेंगी, इससे अव्यवस्था फैलेगी एवं चारों वर्ण आपस में मिश्रित हो जावेंगे, जिनके कारण यह अव्यवस्था फैलेगी, वे अवश्य ही नरकगामी होंगे। पितरों का भी पतन होगा क्योंकि उनको पिण्डदान देने वाला कोई नही बचेगा। हाय! केवल लोभ के वशीभूत होकर हम अपने ही सगे-सम्बन्धिओं को मारने का महापाप करने को उद्यत हो गये हैं। यदि धृतराष्ट्र के पुत्र, अपने तीक्ष्ण शास्त्रों को हाथ में लेकर मुझे उस अवस्था में मार डालें, जबकि मेरे पास कोई शस्त्र नहीं और मैं अपने बचावकी कोई इच्छा ही रखता होंऊ, तो मैं इसे अधिक कल्याणकारी मानूंगा।'' उसके हाथ से धनुष तथा बाण गिर पड़े एवं अर्जुन शोक तथा दुःख से अभिभूत होकर रथ में स्थित अपने आसन पर गिर पड़ा।

यह सत्य है कि अर्जुन अपने मित्रों तथा सगे सम्बन्धियों के लिए शोक प्रकट कर रहा था, इसका निर्णय करना श्रीकृष्ण का ही काम था। यदि वे भावनाऐं सत्य थीं-यह सही दिशा की ओर उन्मुख थी, तो श्रीकृष्ण को क्या अधिकार था कि वे अर्जुन को युद्ध के लिए बाध्य करें।

*

तृतीय प्रवचन

कृष्ण-सारथी

गत संध्या को हमने अर्जुन की दयनीय दशा देखी कि किस प्रकार वह महाभारत प्रारम्भ होने के कुछ ही क्षणों पूर्व शोक तथा निराशा से अभिभूत हो गया था और चिल्ला रहा था, ''हे भगवान, मुझ पर दया कीजिए, मैं अब युद्ध नहीं कर सकता। हम सब अर्जुन के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं और हमें यहीं दिखाई देता है। कि अर्जुन के लिए युद्ध के कर्त्तव्य से विमुख होने के सिवा अन्य कोई रास्ता नहीं है। वह जो कुछ कहता है वह बिल्कुल सत्य है, परन्तु श्रीकृष्ण उसे इतनी आसानी से छोड़ने वाले नहीं हैं। वे केवल बाहरी सुधार नहीं चाहते, किन्तु सच्चा सुधार चाहते हैं। वे अर्जुन को सच्चा त्यागी बनाना चाहते हैं। रोना, विलाप करना तथा रथ में गिर पड़ना-ये सभी इस अभिमान और अंहकार के परिणाम हैं कि ''मैं सबसे बड़ा योद्धा हूं।'' अर्जुन के मन में श्रीकृष्ण के प्रति कुछ श्रद्धा एवं आदर के भाव हैं, परन्तु वह श्रीकृष्ण से, उपदेश देने की प्रार्थना नहीं करता, और वह ऐसा क्यों करें जब कि अर्जुन ऐसा मानता है कि उससे बढ़कर योद्धा या बुद्धिमान कोई दूसरा नहीं है? अपने ही विचारों को दौड़ाइये। तभी आप आन्तरिक अभिप्राय को समझ सकेंगे। महाभारत युद्ध पुराना या नया नहीं है किन्तु वह हमारे प्रतिदिन का अनुभव है। अतः सावधान हो जाइये।

अब हम अपने नेत्र भगवान श्रीकृष्ण के मुख-कमल की ओर घुमावें, जो सारथी बने बैठे हैं श्रीकृष्ण एक ऐसे अद्भुत अभिनेता हैं, जो किसी भी भूमिका का निर्वाह बड़ी कुशलता एवं पूर्णता के साथ कर सकते हैं अपने बचपन से ही उन्होंने सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वे सबसे अच्छे तथा सर्वाधिक कर्त्तव्यनिष्ठ लड़के थे, सबसे अच्छे खिलाड़ी तथा साथी थे। चतुर एवं चालाक चोर थे, पहलवान थे, सबसे अधिक आज्ञाकारी थे तथा एक बुद्धिमान विद्यार्थी थे। वे सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रिय पति, दयालु पिता, अधिवक्ता, वैज्ञानिक, विविध, सुधारक, राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक, सर्वश्रेष्ठ स्वामी, सर्वश्रेष्ठ सेवक, सबसे बड़े योगी एवं सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ, सर्वश्रेष्ठ प्रशासक, सर्वश्रेष्ठ मित्र एवं सर्वश्रेष्ठ भक्त थे। सभी में सर्वश्रेष्ठ ! इतना सब होते हुए भी वे त्यागियों के राजा थे, उनके जीवन में बाल्यकाल से लगाकर जीवन में अन्तिम क्षण तक त्याग गुण की ही प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। इसलिए गीता में त्याग का स्वर ही प्रधान है। हमें अपने मार्गदर्शन एवं मोक्ष के लिए एक आदर्श को सामने रखने की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। यदि तुम सभी श्रेष्ठ एवं उदात्त गुणों को एक व्यक्ति में पाना चाहते हो तो वह तुम्हे श्री कृष्ण में और केवल श्री कृष्ण में ही मिलेगा। इस प्रकार, यदि उनके भक्त उसे पूर्णावतार मानते हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

हम श्रीकृष्ण एवं उनके गुणों पर जितना अधिक विचार करेंगे, जितना अधिक उनका ध्यान करेंगे, उतनी ही अधिक मात्रा में हम अपने दुखों को भूलते जावेंगे।

अभी तक आप अर्जुन के तर्कों को सुन रहे थे। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये बड़ी उत्सुकता के साथ तर्क पर तर्क प्रस्तुत करता जा रहा था, परन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उसके तर्कों को कोई महत्व नहीं दिया और वे क्यों महत्व दें? वे अच्छी तरह जानते थे कि यह सब ढोंग है, जिसकी उत्पत्ति भ्रम तथा अभिमान से हुई है। अर्जुन के स्वभाव में प्रविष्ट सभी निम्न श्रेणी के तत्वों का नाश करने के लिये तथा उसके अपनी दिव्य पैतृक संपत्ति के प्रति सजग एवं स्वाभिमानी बनाने के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार सम्बोधित किया।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमें समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।

हे अर्जुन ! मैं नहीं जानता कि इस नाजुक घड़ी में तुम्हारें मन में कहाँ से ये नीच विचार आ गये, जो पतन कराने वाले हैं, खतरनाक हैं, जो तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य के मार्ग में बुरी तरह रोड़े अटकाने वाले हैं तथा उसे कलंकित करने वाले हैं।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।

हे पार्थ ! इस प्रकार का नपुंसक आचरण तुम्हे शोभा नहीं देता। इस कायरता एवं हृदय की दुर्बलता को दूर भगा दो। साहसी बनो और युद्ध के तैयार हो जाओ। क्या तुम शत्रुओं में आतंक का संचार करने वाले वीर नहीं हो?

यही गीता का शंखनाद है। अपनी निष्क्रियता का परित्याग करो और अधिक मत सोओ। इसी समय जाग पड़ों

और युद्ध के लिए कमर कसकर तैयार हो जाओ। क्या भारत इन शब्दों की ओर ध्यान देगा। तथापि, इन शब्दों ने किंकर्त्तव्य-विमूढ़ अर्जुन के मन में कुछ उत्साह का संचार किया, जिससे वह अपने विचारों को केन्द्रित करने में सफल हुआ एवं उसने अपने बुद्धिमान सारथी से प्रार्थना की "हे मधुसूदन ! भीष्म मेरे पितामह हैं तथा द्रोण मेरे गुरू हैं। मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं पुष्पों से इनकी पूजा करूँ। फिर हे शत्रुनाशक! मैं किस प्रकार इन पर बाणों से प्रहार कर सकता हूँ ? जरा सोचिये। इन प्रबुद्ध महानुभावों को- अपने गुरुजनों को मारकर सुख भोगों को भोगने की अपेक्षा भिक्षा मांग कर जीवित रहना हजारों गुना अच्छा है। ये सुख भोग उनके रक्त से रंगे हुए होंगे। इसके अतिरिक्त, हम यह भी नही जानते होंगे। कि हमारी विजय होगी या नही ? और क्या वे धृतराष्ट्र के पुत्र, हमारे अपने चचेरे भाई नहीं हैं ? हम उनको मारकर सफलता पाना चाहते हैं।"

परन्तु देखिये, कैसे अर्जुन पुनः अपने अभिमान की अवस्था से विनम्रता की अवस्था में रहा है, जब वह कहता है, "मैंने अपने मानसिक संतुलन को खो दिया है। मुझे मोह और करुणा ने अभिभूत कर लिया है। मैं यह भी निश्चित नहीं कर पा रहा हूं कि मेरे लिये क्या उचित है एवं क्या श्रेयस्कर है? मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे उपदेश दीजिए। क्या मैं आप का शिष्य नहीं हूं? मैं आपकी शरण में आ चुका हूँ। मुझे अपनी इच्छानुसार आदेश दीजिए।" परन्तु यह शरणागति केवल क्षणिक थी। दूसरे ही क्षण वह कहता है "मैं नहीं जानता

कि इस सम्पूर्ण भूमण्डल का तथा देवताओं का राज्य पाने पर भी मुझे इस शोकाग्नि का शमन करने में सफलता मिलेगी, जो मेरे शरीर का शोषण कर रही है।" इन्द्रियों के स्वामी, श्री कृष्ण से इस प्रकार कहकर अर्जुन पुनः यह दुहराते हुए चुप हो गया कि "मैं युद्ध नहीं करुँगा।

खैर, श्री भगवान अर्जुन को बाध्य नहीं करना चाहते। वे पहले उससे अपनी बात मनवाना चाहते हैं। इसलिये श्रीभगवान उस पर बुद्धिमतापूर्ण शब्दों की वर्षा करते हैं, जिसे 'भगवद्गीता' के नाम से जाना जाता है।

★

चौथा प्रवचन

ज्ञान योग

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।

"मेरे मित्र ! अर्जुन तुम एक महान तत्वज्ञानी की तरह बातें करते हों, परन्तु मूर्ख की तरह आचरण करते हो। क्या तुम जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो ? तुम उनके लिये शोक कर रहे हो, जिनके लिए शोक करने का कोई भी कारण नहीं है। जो मनुष्य थोड़ा भी बुद्धिमान होगा, वह मृत, मरणासन्न अथवा जीवित प्राणियों के लिये कदापि दुःखी नहीं होगा।"

यह सिद्धान्त अर्जुन के लिये नया है। वह इसे समझ नहीं पाता तथा विस्मित हो जाता है। श्रीभगवान उसे आगे समझाते हैं।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।

'मैं तुम्होरे दुःख का कारण जानता हूं। तुम सोचते हो कि इस शरीर का नाश होते ही सब कुछ नष्ट हो जायेगा। मेरे मित्र, यह सत्य नहीं हैं। तुम इस समय मुझे अपने समक्ष देख रहे हो। तुम ऐसा सोच सकते हो कि इस शरीर में आने के पूर्व मेरा अस्तित्व नहीं था अथवा इस को छोड़ने के पश्चात् मेरा नाश हो जायेगा। तुम ये चीजें अपने विषय में तथा उन राजाओं

व सेनापतियों के विषय में भी सोच सकते हो। जो युद्ध के लिए तैयार होकर तुम्हारे सामने खड़े हैं। हमारा अस्तित्व चिरंतन है, शाश्वत हैं हमारा अस्तित्व कभी भी समाप्त नहीं हो सकता ।

अर्जुन असमंजस में पड़कर खड़ा है। श्री भगवान एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे, कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिः धीस्तत्र न मुह्यति।।

"मेरे मित्र ! तुम मूर्ख नहीं हो। मै जानता हूं कि तुम ज्ञानी तथा बुद्धिमान हो। मेरी बातों को केवल धैर्यपूर्वक सुनने से ही तुम समझ जाओगे। मृत्यु से सभी भयभीत होते हैं, क्योंकि वे नहीं जानते कि यह क्या है? कृपया ध्यानपूर्वक सुनो। तुम एक लघु शिशु के रूप में उत्पन्न हुए थे। धीरे धीरे बढ़कर तुम बालक बने। तुम्हारे लिए किसी ने न तो आँसू बहाए और न यह कहकर विलाप किया कि "हाय ! मेरा शिशु मर गया। फिर तुम नवयुवक हुए। इस बार भी न तो किसी ने यह कहते हुए विलाप किया कि 'मेरा बालक मर गया और नष्ट हो गया।' फिर आगे चलकर तुम वृद्ध हो जाओगे। उस समय भी कोई मूर्ख न तो रोयेगा और न ऐसा कोई विलाप करेगा। कि 'हाय! मेरा नवयुवक मर गया।' कृपया विचार कीजिए कि वे क्यों नहीं रोते हैं। और क्यों नहीं विलाप करते हैं? इसका पहला कारण यह है कि वे शरीर में होने वाले इस परिवर्तन पर ध्यान नहीं देते, क्योंकि यह परिवर्तन घड़ी में घण्टा बताने वाले कांटे में

प्रति मिनट होने वाले परिवर्तन के समान अत्यन्त धीरे-धीरे होता है। इसका दूसरा कारण यह है कि बालक में शिशु नवयुवक में बालक तथा वृद्ध में नवयुवक के दर्शन कर लेते हैं। तथापि वे परिवर्तन को अलग-अलग समझ लेते हैं, तथापि वे जानते हैं कि मुख्य वस्तु विद्यमान हैं परन्तु उसकी मृत्यु पर वे सोचकर रोते व विलाप करते हैं कि वह पूर्णतया नष्ट हो गया। परन्तु ऋषि विलाप नहीं करता क्योंकि वह सत्य को जानता है। हे अर्जुन ! इसे निश्चित रूप से जान लो कि शैशव, यौवन तथा वार्धक्य की भांति मृत्यु भी परिवर्तन की एक अवस्था है।

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत।

"जीव कदापि नहीं मरता। जीव से परित्यक्त होने पर शरीर मरता है, जैसे वृक्ष का पोषक रस चले जाने पर वृक्ष सूख कर मुर्झा जाता है।"

अर्जुन सावधान हो जाता है। उसके लिये ये सब चीजें बिल्कुल नई हैं। उसे पहली बार ज्ञान होता है कि शरीर से भिन्न कोई वस्तु हैं। जो शरीर के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होती। वह इस सम्भावना पर शंका करता है। यदि शरीर से भिन्न कोई वस्तु है, तो अवश्यमेव वह शारीरिक दुःखों तथा कष्टों से अनभिभूत रहती होगी। परन्तु वह शरीर से नितान्त भिन्न किसी चीज के दर्शन नहीं करता। इसलिए यदि यह मान लें कि शरीर से नितान्त भिन्न वस्तु कुछ है, तो भी वह शरीर

के नष्ट होने पर नष्ट हो जाती होगी। अर्जुन को असमन्जस में पड़ा हुआ देखकर उसके भिन्न मंत्र कहते हैं।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।

हे कुन्ती पुत्र ! सच कहा जाय तो, जीव इन उपरोक्त सभी शारीरिक परिवर्तनों से परे है। परन्तु जब यह इन्द्रियों के संपर्क में आता है। यह सब अध्यास या मिथ्या-आरोप के कारण है। प्रकाश स्वयं नीला नहीं है। परन्तु जव वह नीले बल्ब में से निकलता है, तब वह नीला दिखाई देता है। यह अध्यास या मिथ्या आरोप सर्दी, गर्मी, सुख और दुख की अनुभूतियों का कारण है। इन तथ्यों को जान कर उनके परे जाने का प्रयास करो। तुम निश्चयपूर्वक यह जान सकते हो कि वे जीव के गुण नहीं हैं। वे आते हैं और जाते हैं, वे चिरस्थाई नहीं हैं।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
सम दुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।

सुख और दुःख, सर्दी व गर्मी के ये द्वन्द्व उस बुद्धिमान को पीड़ा नहीं पहुंचा सकते, जो सुख और दुःख में समान रहता है। केवल ऐसे ही व्यक्ति को बुद्धिमान कहा जा सकता है और केवल वही जन्म और मृत्यु से छुटकारा पाने के योग्य है। हे पुरुषों में श्रेष्ठ! क्या यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं हैं कि तुम

इन द्वन्द्वों के परे हो जाओ? तुम्हें स्वयं शक्तिहीन होकर तिनके की तरह नहीं बनना है, जो वायु में जहाँ-तहाँ उड़ता रहता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।

"हे प्रिय अर्जुन! यह सत्य है, और यदि तुम इस पर गंभीरता पूर्वक विचार करोगे तो तुम्हारी सभी शंकाएँ व भय नष्ट हो जावेंगे। अस्तित्वहीनता से अस्तित्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती तथा सत्य का कभी नाश नहीं हो सकता। जो सत्य है वह भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों में सत्य ही रहेगा। वह कभी भी असत्य नहीं हो सकता।" वन्ध्या-पुत्र का अस्तित्व किसी भी समय नहीं हो सकता। इस सत्य के सम्बन्ध में महर्षिगण पहले ही निश्चित परिणाम पर पहुंच गये हैं। तुम संध्या के धुँधले प्रकाश में रस्सी देखते हो और वह तुम्हें सर्प दिखाई देता है। परन्तु यह सर्प दिखाई देता है। परन्तु यह सर्प वास्तविक नहीं है। पूर्व में उसका अस्तित्व नहीं था और न भविष्य में रहेगा। वह शून्य में से प्रकट नहीं हो सकता। उसका अधिष्ठान या आधार अवश्य ही होना चाहिए और वह है रस्सी।

उसी प्रकार अंहकार, मन, बुद्धि, पंच कर्मेन्द्रियों तथा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी शक्ति से जीवित नहीं रह सकतीं। उनका आधार अवश्यमेव होना चाहिए और वह है आत्मा। 'ते ध्यानयोगानुगता अवश्यन्।' ऋषियों ने ध्यानयोग के द्वारा देखा कि ब्रह्म की शक्ति का कारण उसके स्वभाव में ही अन्तर्निहित है। केवल वही समय तथा अंहकार के द्वारा सबका अनियमन एवं नियंत्रण करता है- वहीं आत्मा है। जो बात एक व्यक्ति के सम्बन्ध में सत्य है, वह अवश्य ही सभी के सम्बन्ध में सत्य होगी। समुद्र की एक बूंद खारी है। अतः सम्पूर्ण समुद्र अवश्यमेव खारा होगा। इस प्रकार संपूर्ण विश्व केवल आत्मा से ही प्रकट हुआ है।

जो कुछ दिखाई देता है वह आनन्दस्वरूप ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है। "आनन्दंब्रह्मेति व्यजानात्" ऋषियों ने समझ लिया कि सत्य आनन्दस्वरूप है। रसों वै सः-वह सचमुच आनन्द है।

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।

१५ वें अध्याय में विश्व की तुलना अश्वत्थ वृक्ष से की गई है। जिसकी जड़ें यह है कि विश्व की अस्तित्व ऊपर से-आत्मा से- है आगे कहा है "न रूपमस्येह तथोपलभ्यते।" इसका अपना कोई रूप नहीं है। इसका अस्तित्व यथार्थ नहीं है-यह केवल हमें स्वप्नवत् दिखाई देता है। श्रुति तथा स्मृति दोनों ने यह उद्घोषणा की है। कि विश्व का अस्तित्व केवल सापेक्ष है एवं हमारी आत्मा ही चिरंतन एवं शाश्वत है। परन्तु

हम इसका अनुभव केवल ध्यान से कर सकते हैं। और ध्यान का अर्थ केवल इतना ही है। कि हम अपनी इन्द्रियों व मन को भीतर समेट लें जैसे कछुआ अपनी खाल के भीतर अपने अवयवों को समेट लेता है। परन्तु इस प्रकार भीतर समेटना सरल नहीं है। क्यो?

भगवान ने पंच इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है। अतः प्रत्येक व्यक्ति "भीतर क्या है ?" इसे न जानते हुए सदा बाहरी वस्तुओं में ही व्यस्त रहता है परन्तु हजारों में कोई एक वीर "आत्मा"- "सत्य" का ज्ञान प्राप्त करने तथा मोक्ष पाने की तीव्र इच्छा से बहिर्गामी सभी प्रवृत्तियों का निरोध करके, आत्मा का साक्षात्कार करता है। "तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः"।

इसलिये हे अर्जुन! पंच ज्ञानेन्द्रियों का पूर्ण रूपेण नियमन करके मुझसे एकात्म हो जाओ। मैं ही तुम्हारी आत्मा, उद्देश्य एवं लक्ष्य हूं।

जब तक कोई व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के लिये व्यस्त रहता है, तब तक वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर थोड़ा भी नियंत्रण नहीं रख सकता। उसका मन बन्दर की तरह अनवरत रूप से एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर कूदता रहेगा। "ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायाते"।

मनुष्य इन्द्रियों को तृप्त करना चाहता है। इस तृप्ति को वह अपने जीवन का लक्ष्य मानता है। इसलिये वह रात-दिन

इन्द्रियों के विषयों की तृप्ति के विचारों में ही डूबा रहेगा। संक्षेप में, उसका मन कामिनी और काँचन संबन्धी विचारों से ही पूर्णतया ओत-प्रोत रहेगा। वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों को अपने प्रिय पदार्थों से कैसे हटा सकता है।

एक ऐसा शस्त्र है, जिससे इस सांसारिकता की जड़ पर प्रहार किया जा सकता है, और वह है-असंग या अनासक्ति। हम किसी चीज पर आसक्त रहते हैं, क्योंकि हम उसे नित्य मानते हैं। परन्तु ज्यों ही हमें अनुभव हो जाता है। कि सभी भौतिक वस्तुयें नश्वर हैं, त्योंही आसक्ति समाप्त हो जाती है। सतत प्रयत्नशील रहकर ही हम इस अनुभव तक पहुंच सकते है। प्रथमतः नित्य को प्राप्त करो। इस मार्ग से चलकर हम अपनी इन्द्रियों को पूर्णतया वश में कर सकेंगे। विवेक से वैराग्य अर्थात सांसारिक वस्तुओं से विरक्ति की उत्पत्ति होगी।

अतः सदैव विवेक तथा वैराग्य का अभ्यास करो। उनके द्वारा तुम इस संसार का मूलोच्छेद कर अनन्त आनन्द को प्राप्त करोगे, जो इस संसार के परे है और जहाँ से तुम्हे वापिस नहीं आना पड़ेगा।

अपनी आत्मा के ज्ञान से बढ़कर अधिक आनन्द देने वाली कोई वस्तु नहीं है। और अब सुनो, मैं इस आत्मा के स्वभाव का वर्णन करता हूं-

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।।
ज्योतिषामपि-तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।।

आत्मा अनादि है। वह परं ब्रह्म है। उसे सत् (विद्यमान) अथवा असत् (अविद्यमान कहकर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में हम उसे सीमित बनाते हैं। परन्तु आत्मा असीमित है। सभी ओर उसके हाथ पैर, आँख कान, मुख तथा शिर हैं। वह इस संसार में रहता हुआ भी सबसे परे है। उसकी कोई इन्द्रिय नहीं है परन्तु वह सभी इन्द्रियों को प्रकाश तथा जीवन प्रदान करता है। वह किसी पर आसक्त न होते हुए सबको अपने में रखता है। यद्यपि वह सभी गुणों से परे हैं तथापि वह गुणों का साक्षी है। वह विश्व के भीतर और बाहर दोनों ओर हैं। वह चल तथा अचल है। वह सूक्ष्माति सूक्ष्म है। अतः हमारी पकड़ के बाहर है। वह

अत्यन्त दूर है। परन्तु वह प्रत्येक जीव में विभाजित प्रतीत होता है। वही एकमात्र सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता है। वह अन्धकार के परे है, प्रकाशों का प्रकाश है एवं स्वयं प्रकाशित है। वह ज्ञान है वह ज्ञेय है। तथा ज्ञान और बुद्धि का गन्तव्य स्थान है। और हे अर्जुन! तुम यह भी जान लो कि वह तुम्हारे हृदय में भी विद्यमान है।

और अब आत्म-ज्ञान की शक्ति देखिये-

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।

यद्यपि तुमने घोर पाप किये हों और तुम महापापी हो, तथापि तुम ज्ञानरूपी नौका से ही पापों के समुद्र को पार कर जाओगे। और भी,

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।।

जिस प्रकार अच्छी तरह प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को राख कर देती है, उसी प्रकार हे अर्जुन ! ज्ञान की अग्नि अनन्त जन्मों में संचित कर्मफलों को नष्ट कर देती है। इस पृथ्वी पर ज्ञान से बढ़कर पवित्र करने वाली कोई भी वस्तु नहीं। और ऐसे ज्ञान को प्राप्त करने के लिये-

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

सच्चे महात्माओं को प्राप्त करो। जिन ज्ञानियों ने सत्य का दर्शन कर लिया है, उनको आत्मसमर्पण कर दो, उनकी सेवा श्रद्धा-भक्ति पूर्वक करो तथा अवसर आने पर उनसे अपनी शंकाओं का निराकरण कराओ। हे अर्जुन ! यह जान लो कि ऐसे लोग दयालु होते हैं। यदि तुममें सच्ची लगन है, तो वे तुम्हे सब कुछ बता देंगे।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।

और हे पाण्डव ! सत्य को जानने पर मोह के लिये स्थान ही नहीं रह जाता क्योंकि फिर तुम मुझमें मिलकर मुक्त हो जाओगे। तुम अपनी ही आत्मा में विश्व को देखोगे और वह आत्मा केवल मैं ही हूं।

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

अभिमान, मिथ्या गर्व तथा मोह से मुक्त होकर आसक्ति की बुराइयों के परे होकर, आत्मसाक्षात्कार के मार्ग तथा उपायों में सदैव लीन रहकर, सांसारिकता के लेशमात्र से भी अलग रहकर, सर्दी-गर्मी, सुख-दुख आदि द्वन्द्वों से विरक्त होकर बुद्धिमान लोग उस अव्यय, अविनाशी पद को प्राप्त करते हैं।

पंचम-प्रवचन

कर्म योग

आज की सन्ध्या को हम पुनः श्री भगवान जी के तेजस्वी प्रवचन को सुनने के लिये एकत्रित हुए हैं। अपने ही वास्तविक स्वरूप-आत्मा की प्रकृति एवं महिमा को सुनकर अर्जुन प्रसन्न होता है। उसकी कायरता जनित उदासी हट जाती है और वीरता उसका स्थान ग्रहण करती है। वह भगवान से पूछता है-

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।

"हे अज्ञान का नाश करने वाले जनार्दन ! यदि आप ज्ञान को कर्म से बढ़कर मानते हैं, तो फिर हे केशव! आप क्यों मुझे इस भंयकर कार्य में जबर्दस्ती लगाते हैं ?" भगवान ने दूसरे अध्याय के अन्त में स्पष्ट कर ही दिया है। कि यदि कोई अपने जीवन के अन्तिम क्षण में भी मन की स्थिरता तथा शांतता को प्राप्त कर लेता है, तो वह मुक्त हो जाता है।

भगवान अर्जुन के द्वारा सच्चे मन से किये गये एवं बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रश्न पर ध्यान देते हैं तथा उत्तर देते हैं "हे अर्जुन ! तुम पूर्णरूपेण सही हो, परन्तु तुम्हारा मार्ग भिन्न है। ज्ञान का मार्ग केवल विद्वानों एवं बुद्धिमानों के लिए हैं, जो सत्य का अन्वेषण केवल ज्ञान से करते हैं। परन्तु तुम्हारी प्रकृति भिन्न है, अतः तुम्हारा मार्ग भी भिन्न है। तुम क्षत्रिय हो, जिसका स्वभाव योद्धापन है। तुम्हारे लिए कर्म का मार्ग है।

केवल अपने कर्त्तव्यों का पालन करके ही कोई भी व्यक्ति ज्ञान के योग्य बनता है। यदि तुम अचानक ही कर्म का परित्याग कर निष्क्रिय बन जाते हो, तो तुम्हारा पतन अवश्यम्भावी है। जब तक तुममें भीतरी वैराग्य की उत्पत्ति नहीं हो जाती, तब तक तुम अपने कर्त्तव्यों को नहीं छोड़ सकते। अतः युद्ध करो, युद्ध करो, केवल युद्ध के द्वारा ही तुम अपने विद्रोही स्वभाव पर विजय पा सकोगे। इसके अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति बिना कार्य किये क्षण भर भी नहीं रह सकता। प्रकृति प्रत्येक को कर्म करने के लिये बाध्य करती है।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते ।।

जो केवल आत्मा में ही आनन्द प्राप्त करता है, जो केवल आत्मा से ही सन्तुष्ट है, उसके लिये कुछ भी कर्त्तव्य कर्म शेष नहीं है। परन्तु तुम पर कई बन्धन हैं। यह सत्य है कि कर्म बन्धन में डालता है, परन्तु तुम निष्काम या अनासक्त कर्म करके कर्म के परे जा सकते हो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

केवल कर्म करने में तुम्हारा अधिकार है परन्तु उनसे होने वाले फलों पर नहीं। तब कुछ भी बन्धनकारक नहीं रहेगा और तुम बच जाओगे।

अतः भगवान अर्जुन को अपना कर्त्तव्य कर्म करने का उपदेश देते हैं ताकि वह योगस्थ हो सके। निःसन्देह योग के विभिन्न अर्थ हैं, परन्तु यहां उसका अर्थ है मन को सफलता एवं असफलता-दोनों ही अवस्थाओं में सन्तुलित रखना, अर्थात

न तो सफलता से फूलना और न असफलता से निराश होना। वे सभी कार्य बन्धनकारक होते है, जो इस प्रकार त्याग पूर्ण सन्तुलन के बिना किये जाते हैं।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

हे अर्जुन ! कर्म के द्वारा ही जनक तथा अन्य योगियों ने पूर्णता प्राप्त की। तुम्हें भी संसार के लिये अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। यदि तुम अपने कर्मों की उपेक्षा करके आलसी बनकर बैठ जाओगे, तो दूसरे तुम्हारा अनुकरण करेंगे और संसार में अव्यवस्था फैलेगी।

अहङ्कारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

इसके अतिरिक्त क्या तुम सचमुच "कर्ता" हो? सभी बुराइयां केवल इसी गलत धारणा से उत्पन्न होती हैं कि "मैं कार्य कर रहा हूं।" तुम "मैं" शरीर को मानते हो, परन्तु सच्चा "मैं" तुम्हारी स्वयं की आत्मा है, जो न तो कर्ता है और न भोक्ता। तुम्हारी आत्मा-"मैं" के स्वभाव के विषय में मैं तुम्हें बहुत कुछ बता चुका हूं। अतः तुम अपने सामान्य कर्मों, जैसे खाना, पीना, बात करना, अध्ययन करना, युद्ध करना आदि, मैं भी आत्मा में ही स्थित होने का अभ्यास करो। उन कार्यों के साथ "मैं" का मिलाने के भ्रम में मत पड़ो। उसे सदैव अलग रखो। वस्तुतः में वह सदैव अलिप्त ही रहता है। तुम अपनी अज्ञानता में उसे कर्ता मान बैठते हो। मैं आशा करता हूं कि तुम यह समझ गये होंगे कि अच्छा या बुरा प्रत्येक कार्य भीतर से ही शक्ति प्राप्त करता है। तब तुम क्यों उन कार्यों के लिये अपने आपको जिम्मेदार समझते हो, जिन्हें करने की

प्रेरणा तुम्हें भीतर से प्राप्त होती है? उस ''भीतरी मानव'' के प्रति आत्मसमर्पण कर दो और परिणाम की ओर ध्यान मत दो। सच्चा सन्यासी और योगी बनो, जो अपना कार्य बिना फल की परवाह किये करता जाता है।

परन्तु सच्चा सन्यासी या कर्मयोगी बनना सरल कार्य नहीं है। केवल तप के द्वारा मुक्ति पाने की आशा की जा सकती है। और तप के तीन विभाग हैं - कायिक, वाचिक, एवं मानसिक।

देवताओं, ब्राह्मणों, अपने माता-पिता, गुरुओं, ज्ञानियों, सज्जनों, महात्माओं तथा विद्वानों की सेवा, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करो। अपने शरीर को सदा पवित्र एवं स्वच्छ रखो। ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन करो। यह शारीरिक तप कहलाता है।

अपने वचनों से किसी की भावनाओं पर आघात मत करो। सत्य तथा प्रिय वाणी बोलो। पवित्र शास्त्रों का अध्ययन करो और जप करो। यह वाचिक तप कहलाता है।

मन को सदैव शांत और अविचलित रखने का प्रयास करो। उसे नम्र बनाओ ताकि तुममें प्रेम और सहानुभूति हो, हृदय की अभिलाषाओं को शांत करने का प्रयास करो और आत्म-संयम प्राप्त करो। यह मानसिक तप है।

हे अर्जुन ! ये पूर्ण पुरुष के लक्षण हैं। मैं तुम्हें पूर्ण-पुरुष बनाना चाहता हूं, इसलिये तुम मेरे प्रत्येक शब्द को ध्यान देकर सुनो।

अपने आप को भगवान की दया पर छोड़ने मात्र से ही तुम्हें किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिल सकती। तुम्हें

असफलताऐं मिलेंगी, परन्तु असफलताओं को शीघ्र ही सफलताओं में बदला जा सकता है। एक विद्यार्थी का उदाहरण लें। उसकी सफलता के लिए पाँच चीजें नितान्त आवश्यक हैं। (१) उसके सामने एक निश्चित लक्ष्य होना चाहिए। (२) उसके लिये कार्य करने के लिये उसे तैयार होना चाहिए। (३) उसके शिक्षा योग्य होने चाहिए व उसके पास अध्ययन के लिए उपयुक्त पुस्तकें होनी चाहिए। (४) सफल होने के लिये उसे विविध उपायों का उपयोग करना चाहिए। और अन्त में (५) भाग्य या प्रभु कृपा होनी चाहिए। यदि उपर्युक्त पाँचों वस्तुएं अर्थात (१) लक्ष्य (२) कर्ता (३) विभिन्न हथियार, औजार या उपाय (४) कार्य करने की विधियाँ या मार्ग और (५) प्रभु कृपा उपस्थिति हों, वहाँ कोई भी कार्य सफल एवं पूर्ण होगा।

। कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

प्रत्येक को चाहिये कि वह अपने कर्त्तव्य पालन में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दे। यही श्रुति का कथन है। परन्तु कुछ आत्माएं ऐसी हैं जिन्होंने साक्षात्कार कर लिया है, और वे चाहे कार्य करें या न करें-दोनों ही अवस्थाओं में वे मुक्त हैं। परन्तु ऐसी आत्माऐं अत्यन्त दुर्लभ हैं और हमें उनकी निष्क्रियता से स्पर्धा नहीं करना है। सभी कार्यों को मिथ्या मानकर आश्रमों में शरण लेना भी भारत के अधःपतन का एक कारण है। ऐसे मूर्ख, आलसी, नकलचियों के लिये गीता की कोई सहानुभूति नहीं है। उनके लिये यही अकाट्य आदेश है। ''नियतं कुरु कर्म त्वम्'' तुम अपना कर्त्तव्य कर्म करो। तुम्हारे पूर्वज कभी भी आलसी नहीं रहे। वे महान कर्मयोगी थे। यह

तुम्हारो कर्त्तव्य है कि तुम उनका अनुकरण करो और यदि सम्भव हो तो उनसे भी बढ़कर होने का प्रयास करो, क्योंकि कर्म किये बिना कोई भी व्यक्ति एक क्षण भी नहीं रह सकता। यदि तुम इच्छा आसक्ति या पुरस्कार की भावना के बिना कार्य नहीं कर सकते तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं । तुम किसी भी प्रकार से आलसी, अकर्मण्य, मूढ़ एवं निष्क्रिय कदापि मत बनो। कार्य करो, आसक्तिपूर्वक भी कार्य करते जाओ। अन्त में तुम सच्चे कर्मयोगी बन जाओगे।

मेरे मित्र! अपने आप में कोई भी कर्म नीच नहीं है। उसे नीच या महान बनाने वाले तुम हो। तुम उसे जैसा चाहो वैसा बना सकते हो। इसलिये भगवान अर्जुन को इस प्रकार उपदेश देते हैं।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

"नीच या खराब दिखाई देने वाले अपने कर्त्तव्यों का पालन करना दूसरों के अच्छे व महान दिखाई देने वाले कर्त्तव्यों से हजारों गुना बढ़कर है। अर्जुन क्षत्रिय था। परन्तु वह ब्राह्मणों का मार्ग संन्यास अपनाना चाहता था।

❋

षष्ठ प्रवचन

कर्मयोग क्रमगत

गत सन्ध्या को हमने कर्मयोग के कुछ पहलुओं पर चर्चा की थी। वह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि मैं आज की संध्या में भी इस पर कुछ अधिक प्रकाश डालना चाहूंगा।

मेरे मित्रों ! जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, कोई भी कर्म अपने आप में नीच या महान नहीं है। तुम राजा के कार्य को भी नीच कर सकते हो और मेहतर के कार्य को भी महान कर सकते हो।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

यह सत्य है कि जो भी कर्म यज्ञ की श्रेणी में नहीं आता, वह बन्धनकारक होता है, परन्तु प्रत्येक कर्म को यज्ञ में परिवर्तित करना हमारी शक्ति के बाहर नहीं है। व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन! यहां सबसे अधिक आवश्यकता दृढनिश्चय तथा सतत प्रयन्तशीलता की है। सतत प्रयत्नशीलता पर ही सभी सद्गुण आधारित हैं। तुम जो कार्य कर रहे हो, उसमें अपने व्यक्तित्व को पूर्णतया विलीन कर दो। किसी पतिव्रता पत्नी को रात्रि में सूचना मिलती है कि उसका पति, जो बहुत दिनों से परदेश गया था, दूसरे दिन बड़े सबेरे आवेगा। उसी क्षण से लगाकर, जब तक वह उससे नहीं मिलती, तब तक वह अपने पति, अपने स्वामी को छोड़कर अन्य किसी भी बात की चिन्ता नहीं करेगी। वह अपने कपड़े साफ करेगी। मकान साफ करेगी और स्वयं अपनी चेतना खो बैठती है, और

अन्य किसी भी बात का चिन्तन नहीं कर सकती। परन्तु इस सम्पूर्ण समय में वह यज्ञ कर रही है। वे छात्र जो अपने अध्ययन तथा खेल के मैदानों में रत है, वे शिक्षक जो अपने अध्यापन कार्य में सही भावना से लगे हुये हैं, वे वकील जो अपने मामलों में व्यस्त है, वे लिपिक, जो अपने कार्यालयीन कार्यो में रत हैं, वे राजा, जो प्रशासन चला रहे हैं, वे कसाई जो वध का कार्य कर रहे हैं- वे सभी यदि सभी भावना से अपना कार्य करते हैं, तो वे महान यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञात् भवति पर्जन्यः । इसमे शंका को कोई स्थान नहीं। सचमुच वह स्थान स्वर्ग है। जहाँ लोग यज्ञ की भावना से स्वधर्म का पालन करते हैं।

इसीलिये आप सबों को यह उपदेश दिया जाता है। कि बड़े तड़के उठो, शरीर को स्नानादि से शुद्ध करो, संध्या करो, यदि संभव हो तो हवनपूर्वक गायत्री का उच्चारण करो, नियमित रूप से पूजा और जप करो, दानशील बनो, जीवों से प्रेम करने वाले और सहानुभूति रखने वाले बनो, अपने चरित्र का निर्माण करो और उत्साह एवं लगन पूर्वक अपने कर्त्तव्य कर्म में जुट जाओ। हमें हमारे धर्म की खिल्ली नहीं उड़ाना है, क्योंकि प्रत्येक धार्मिक कृत्य अर्थवान है। कर्मकाण्ड अर्थपूर्ण हैं, उनका आधार आरोग्यप्रद एवं वैज्ञानिक है। अपनी आंखे खोलो और देखो। दूसरी बात, जिस पर भगवान विशेष जोर देना चाहते हैं, यह है कि-

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।

मनुष्य की सफलता उसकी श्रद्धा पर निर्भर है। श्रद्धा

के कारण एक मनुष्य अपने व्यापार में सफलता प्राप्त करता है, जबकि दूसरा आलसी, उदासीन और श्रद्धाहीन मनुष्य असफलता प्राप्त करता है। यह श्रद्धा क्या है? यह शास्त्रों की सत्यता पर तथा गुरुओं के कथन पर तीव्र, प्रगतिशील विश्वास, जो शीघ्र ही किसी भी व्यक्ति के कार्यों को गति प्रदान करने वाली शक्ति बन जाती है। जो कुछ हम श्रद्धापूर्वक करते हैं, वह हमारी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करता है। इस प्रकार हमारी उन्नति अधिक तेजी से होती जाती है। इसके विपरित, बिना श्रद्धा के के किये गये कार्य हमारी अज्ञानता तथा अंहकार को बढ़ाते हैं, जिससे संसार के बंधन अधिक दृढ़ होते हैं।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।

"हे अर्जुन! श्रद्धा के बिना जो कार्य किया जाता है, चाहे वह यज्ञ हो, दान हो, पूजा हो या और भी कोई पुण्य कार्य हो- इस लोक में जैसा कि पूर्व अध्याय मे कहा गया है, श्री भगवान हमें पाँच चीजों का स्मरण कराते हैं, जो प्रत्येक कार्य की सफलता के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं:-

अधिष्ठानं तथा कर्ता, करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।।

वस्तु, कर्ता, विभिन्न हथियार व औजार, अनेक प्रकार की चेष्टाएँ और अन्त में सर्वशक्तिमान परमात्मा।

❖

भक्तियोग

आज की संध्या में मैं भक्तियोग पर कुछ कहूंगा, जैसा भगवान श्रीकृष्ण ने अपने भक्त तथा प्रशंसक अर्जुन को सिखाया। यह एक महत्वपूर्ण विषय है।

नारद के अनुसार भक्ति की परिभाषा है, परानुरक्तिश्वरे ईश्वर के प्रति अबाधित उत्कट प्रेम-ईश्वर के प्रति यह प्रेम प्रारम्भ से ही शान्ति और आनन्द प्रदान करता है। अतः वे कहते हैं कि भक्ति का यह मार्ग पूर्णता करने का सबसे सरल मार्ग है। सचमुच जब हम कुछ प्रेम, प्राप्त कर लेते हैं, तब यह मार्ग सरल हो जाता है। कोई भी व्यक्ति यह आशा नहीं कर सकता। कि उसे यह प्रेम अचानक ही प्राप्त हो जावेगा। यह प्रेम कैसे उत्पन्न किया जाय? यही कठिनाई है। भगवान स्वयं कहते हैं, "मैं मुमुक्षुओं को प्रसन्नतापूर्वक मुक्ति दे दूँगा परन्तु भक्ति नहीं। देखो भक्ति कितनी उच्च एवं महान है। यह व्यक्ति को अधिकाधिक दिव्य बनाती है और अन्त में भगवान के ही स्वरूप में बदल देती है। वह अन्त में स्वयं भगवान ही बन जाता है।

इसीलिये श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं "भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः- "भक्ति के द्वारा ही मुझे कोई पूर्णतया जानता है कि मैं कौन हूं और मेरे क्या गुण हैं? भक्त अपनी ही आत्मा में श्री भगवान का पूर्ण साक्षात्कार करता है। और वे परमेश्वर क्या है? अहं कृत्स्नस्य

जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। संम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति मुझसे हुई है और मुझमें ही वह लीन हो जावेगा।" और भी "पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।" "मै इस विश्व का पिता, माता, रक्षक तथा पितामह भी हूं।" हम पर जो महान करुणा एवं कृपा की वर्षा करते हैं, उसके लिये उनकी याद करना हमारा कर्त्तव्य है। और वे हमारे प्रत्येक तन्तु को जीवन एवं प्रकाश देते हुए हमारे हृदय में स्थित है। यह शरीर भगवान का वाहन है और वे इसके अधिष्ठातृ देवता हैं। वे सच्चिदानन्द हैं, अनन्त अस्तित्व, संपूर्ण ज्ञान तथा संपूर्ण आनन्द हैं। वे पूर्णतया प्रकाशमान हैं। सभी प्रकाशमान वस्तुऐं जैसे सूर्य, चन्द्रमा, तारे और अग्नि उनके ही तेज से तेजस्वी और उनके ही प्रकाश से प्रकाशमान् हैं। यस्मिन् विभाते सर्वमिदम् विभाति। केवल उन्हीं की कृपा से हमें दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, गन्ध, स्वाद एवं वाणी प्राप्त हो रही है। जो हम पर कुछ उपकार करता है, उसके प्रति हम आभारी होते हैं। फिर जिससे हमें हर चीज मिल रही है, उसके प्रति हमें कितना अधिक आभारी होना चाहिए? परन्तु बहुत कम लोग इस सत्य को जानते है। इसीलिये उसके चरणकमलों के प्रति श्रद्धा-भक्ति की कमी है। परन्तु जब कोई व्यक्ति इस सत्य को जान लेता है, तब स्वाभाविक रूप से उसका मन उस परमात्मा की ओर बहने लगता है। यह प्रवाह इतना शक्तिशाली होता है कि कोई उसे रोक नहीं सकता, जैसा कि प्रह्लाद, ध्रुव, रामकृष्ण, मीराबाई, तुलसीदास एवं भूतकाल तथा वर्तमानकाल के भक्तों के जीवन में हुआ था।

और जब तक कोई व्यक्ति दूसरों से सुनकर किसी के विषय में नहीं जान लेता, तब तक वह उससे कैसे प्रेम कर सकता है? इसलिये हमें उसे भगवान के विषय में उनके भक्तों से निरन्तर श्रवण करना होगा, न केवल सुनना होगा, जब तक कि हम उनमें पूर्णतया व स्थायी रूप से स्थित नहीं हो जाते। किसी व्यक्ति का किसी वस्तु के प्रति जो प्रेम होता है, उस पर ही सब कुछ आश्रित है। जो कामी प्रकृति के होते हैं, वे अपने प्रिय-पात्र के विषय में सुनते रहने से कभी नहीं अघाते और जो धन के पीछे पड़े रहते हैं, उनका मन सदैव धन में ही केन्द्रित रहता है। प्रहलाद कहता है।

या बुद्धिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा में हृदयान्मापसर्पतु ।।

"हे भगवान! सांसारिक तथा अज्ञानी लोग सतत प्रयत्नशील रहकर सॉंसारिक आनन्द ढूँढते फिरते हैं। मेरे हृदय में आपके प्रति वैसा ही दृढ़ एवं चिरस्थाई प्रेम होवे"। निराकार होते हुए भी भगवान जितने चाहें, उतने रूप ले सकते हैं। कोई व्यक्ति अचानक ही सीधे निराकार परमात्मा के पास नहीं पहुंच सकेगा। उसे प्रारम्भ करना होगा । राम, कृष्ण आदि दिव्य-स्वरूपों के ध्यान से । अवतारों की लीलाओं को सुनते-सुनते हमरा मन उसमें लीन हो जावेगा। और अन्त में यदि हम अपनी अभिलाषा को बलवती बनाये रख सकें, तो हमारे लिये भक्ति के लक्ष्य तक पहुंचना अधिक कठिन न होगा। हमें स्वेच्छा से न कि बल पूर्वक, धन, नाम, कीर्ति और अपने अंहकार को भी उनके चरणों में समर्पित करना होगा। क्या तुम जानते हो कि हमारा

लक्ष्य क्या बनने का है? इस कथन की सत्यता का अनुभव हम स्वयं करने जा रहे हैं । कि "मेरे पिता और मैं एक हैं" हम अब दास बनने वाले नहीं हैं, परन्तु संपूर्ण विश्व के स्वामी बनने जा रहे हैं। क्या यह छोटा कार्य है? इसे प्राप्त करने के लिये हमें अपने आपको ऐसा प्रशिक्षण देना पड़ेगा कि हम पर सांसारिकता का कोई असर न हो। हमारे मन में लेशमात्र भी सांसारिक वस्तुओं की कामना नहीं होनी चाहिए। मन परमात्मा से और केवल परमात्मा से पूर्णतया आपूरित होना चाहिये।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ऋषियों ने सगुणोपासना निर्धारित की है। अपना इष्टदेवता चुन लो, अपने घर के किसी कमरे में उसकी मूर्ति की स्थापना करो। प्रतिदिन संपूर्ण हृदय से एवं बड़े भाव से उसकी पूजा करो। किसी भी सुखासन में सीधे बैठकर दैनिक ध्यान करो। उसके स्वरूप में ही अपना मन केन्द्रित करो। जब कभी तुम्हारा मन भटकता है तब उसे पुनः धीरे से उसी बिन्दु पर लाओ। इस अभ्यास के द्वारा तुम अपना मन शान्त एवं स्थिर कर सकते हो। केवल स्थिर मन में ही ईश्वर प्रकट होता है।

श्री भगवान अर्जुन से कहते हैं कि वह उनके विराट रूप का ध्यान और पूजा करें, जो विश्वरूप हैं जिसके हजारो मुख हैं, हजारों हाथ और हजारों चरण हैं।

अग्निमूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे, वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा।।

उसका सिर सर्वोच्च आकाश है, सूर्य और चन्द्रमा

उसकी आंखे हैं, दिशायें उनके कान हैं, वायु उसके पंचप्राण हैं, अन्तरिक्ष उसका हृदय है और पृथिवी उसके पाद पीठ है और व सभी प्राणियों की अन्तरात्मा है।

यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ।
सूर्यश्चक्षुः दिशः श्रोत्रे तस्मै लोकात्मने नमः ।।

मै उस परमात्मा को प्रणाम करता हूं, जो संपूर्ण विश्व में व्याप्त है, अग्नि जिसका मुख है, स्वर्ग जिसका सिर है। आकाश जिसकी नाभि, पृथ्वी जिसका पैर है, सूर्य जिसकी आंखे हैं और दिशायें जिसके कान हैं।

यह भी पूजा के लिये विश्वरूप है। जहां कही हम अपनी आंखे दौड़ाते हैं, वहां उसे और केवल उसे ही देखते हैं। ''आत्मा का ध्यान विश्व-मन के रूप में करना चाहिए और वह हमारे हृदयों के हृदय में विराजमान हैं'

जब अर्जुन को भगवान का विश्वरूप दिखाया गया तब वह अत्यन्त भयभीत हो गया। और भगवान को उसके सामने पीताम्बरधारी, हास्ययुक्त मुखवाले, चतुर्भुजी रूप में उपस्थित होना पड़ा। यदि भगवान सबके हृदय में स्थित हैं, प्रत्येक को उनकी उपस्थिति का अनुभव होना चाहिए तथा सभी कष्टों व दुःखों के परे हो जाना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता। कारण स्पष्ट है । केवल स्वच्छ दर्पण में ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, गंदे दर्पण में नहीं। इसी प्रकार जब तक मन अपवित्र है, तब तक वह उसकी उपस्थिति का अनुभव नहीं कर सकता। इसीलिए कर्मयोग और उपासना (पूजा) की आवश्यकता है।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

मनुष्य स्वकर्त्तव्य पालन द्वारा मेरी पूजा करके पूर्णता प्राप्त करता है। मनुष्य निष्ठापूर्वक एवं लगन पूर्वक अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करके अपने मन को अधिकाधिक शुद्ध बना सकता है। हम कर्मयोग एवं उपासना की आवश्यकता एवं महत्व पर पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं।

हमें पम्प के द्वारा बाहर निकालने का तरीका अवश्यमेव अपनाना चाहिये। अपनी आसुरी (पैशाचिक) प्रवृत्तियों को बाहर निकाल दो, फिर तुम्हारे भीतर देवत्व दौड़ पड़ेगा। यह सरल कार्य नहीं है। हम संसार का लाड़-प्यार इतने लम्बे समय से कर रहे हैं कि हमारे चाहने पर भी संसार हमें आसानी से नहीं छोड़ेगा। श्रीरामकृष्ण परमहंस के दृष्टान्त में पालतू कुत्ते की कथा तुम सब जानते हो।

किसी मनुष्य के पास एक पालतू कुत्ता था और वह दिन भर उसे लाड़-प्यार करता और उससे खेला करता था। किसी बुद्धिमान आदमी ने एक बार उसे उपदेश दिया कि वह कुत्ते से इतना अधिक लाड़-प्यार न करे। आखिर वह एक ज्ञानहीन जानवर है, वह किसी भी दिन सब कुछ भूलकर उसे काट सकता है उस धनवान व्यक्ति ने उस दिन से उस कुत्ते को अलग रखने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके प्रयत्न व्यर्थ हुए। अन्त में उस धनवान व्यक्ति ने कुत्ते के प्रति कोई सहानुभूति न रखते हुए उसे जोर-जोर से मारा। और जमीन पर पटक दिया । उस समय से उस कुत्ते ने उस व्यक्ति को छोड़ दिया। इसी प्रकार जब तक हम इन्द्रियों के संसार से लाड़प्यार से प्यार

करते रहेंगे तब तक संसार हम कभी नहीं छोड़गा हमे पूर्णतया संसार छोड़ना होगा और उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रखनी होगी।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत् त्यज।

यदि तुम मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष की तरह त्याग दो। क्षमार्जवं दया तोषं सत्यं पीयूषवत् भज। और क्षमा, सीधापन, सन्तोष, प्रेम, दया और सत्य को अमृत की तरह अपनाओ।

सोलहवें अध्याय में दैवी और आसुरी गुणों का विवेचन किया गया है वास्तविक महाभारत युद्ध दैवी और असुरों के बीच सदा चलता रहता है। तुम गीता के सोलहवें अध्याय का अध्ययन करके दैवी गुणों का परिचय प्राप्त कर सकते हो ताकि तुम उसका विकास कर उसको शक्तिशाली बना सको और उनकी सहायता से असुरी प्रवृत्तियों को पराजित कर सको। भगवान की कृपा से यदि तुम्हें सद्गुरु मिल जायें और यदि तुम उनकी सेवा करते हुए मार्गदर्शन में अपना जीवन ढाल सको तो तुम सफलता के मार्ग में आगे बढ़ रहे हो और सभी चीजें सरल हो जायेंगी।

सभी मार्गों में पतन के गर्त रहते हैं। इसी प्रकार भक्ति मार्ग में भी हैं। परन्तु ये केवल प्रारंभिक अवस्था में हैं। यदि हम थोड़ी सी अग्नि पर असावधानीपूर्वक ईंधन डालते जायें, तो वह बुझ सकती है। परन्तु जब एक बार अग्नि भड़क उठती है, तब हम उसमें अधिकाधिक ईंधन डाल सकते हैं और उसके बुझने का कोई डर नहीं रहता। हमें प्रगति की प्रारंभिक

अवस्थाओं में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए यदि हम असावधानीपूर्वक किसी से और प्रत्येक से संपर्क स्थापित करें तो हमारा विनाश निश्चित है। हमें श्रेष्ठ संतों की संगति में रहना चाहिए, अतिसाँसारिक लोगों की संगति में नहीं।

भगवान कहते हैं "क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम्" जो लोग निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हैं, उनका मार्ग निःसंदेह कठिनाईयों से भरा हुआ है। यदि हमारा लक्ष्य सांसारिक चिन्ताओं, झंझटों, विषम परिस्थितियों तथा विपत्तियों से छुटकारा पाना तो हमें अपना मन सांसारिक चीजों से हटाकर अपना सम्पूर्ण हृदय भगवान को देना होगा। हमें इस बात का चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि वह सगुण है या निर्गुण है। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। केवल सगुण ब्रह्म की उपासना अधिक सरल है। किसी भी प्रकार से हो, हमें अपना प्रेम भगवान के प्रति बढ़ाना चाहिए। भक्ति की बाढ़ हमारे हृदय में अपवित्रता का लेश भी नहीं रहने देगी। हमारा कर्त्तव्य है कि हम भगवान के प्रति इस प्रेम के प्रवाह को तीव्र बनावें।

तेषांमहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।

"मैं उन्हें मृत्यु और जन्म के समुद्र से क्षण भर में पार लगा दूँगा।" गुलाम आनन्द नहीं मना सकता। केवल स्वामी ही पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकता है। हमें अपने मन और इन्द्रियों का स्वामी बनना होगा। 'जितं जगत् केन।' संपूर्ण विश्व को किसने जीत लिया है? 'मनो हि येन।' जिसने अपने मन पर अधिकार कर लिया है। भगवान कहते हैं-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

'केवल वही व्यक्ति सभी भयों एवं चिन्ताओं के परे जा सकता है।, जो ध्यान का अभ्यास करता है, जो आहार व विहार में, सोने व जागने में संयम बरतता है।'

भगवान ब्रह्मचर्य के महत्व पर भी जोर देते हैं।

प्रशान्तात्मा/विगतभीर्ब्रम्हचारिव्रते स्थितः ।

श्री शंकर ने ब्रह्मचर्य को इस प्रकार समझाया है 'रति विषयतृष्णात्यागः-स्त्रियों के प्रति काम तथा वासना का अभाव। इसके बिना आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति नहीं हो सकती। यदि हम शास्त्रों तथा गुरुवाक्यों का सच्चा अर्थ समझना चाहते हैं, तो हमें प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।' 'इदं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येण विन्दते।' वे ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं।

श्री भगवान के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण में ही भक्ति की चरम परिणति होती है। श्री भगवान कहते हैं ''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'' हे अर्जुन! अपने ऊपर कोई जिम्मेदारी मत लो। अपने कर्त्तव्य का ठीक-ठीक पालन करते जाओ। उसके अच्छे या बुरे पहलू पर ध्यान मत दो। अपने आपको और अपने कर्मों के फलों को मुझे समर्पित कर दो और मुक्त हो जाओ। अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा। तुम दुःखी मत होओ।'' ये आश्वासन के शब्द हैं, जो भगवान के द्वारा अपने सच्चे भक्तों को दिये

गये हैं। हमें उनके उपदेश का पालन सच्चाई तथा निष्ठापूर्वक करना चाहिये।

संजय अपने वर्णन का उपसंहार इन शब्दों से करता है।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।

''हे धृतराष्ट्र ! जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं और जहाँ युद्ध के लिये धनुषबाण धारण करने वाला पार्थ है, वहाँ सफलता, वैभव, न्याय आदि की कोई कमी नहीं हो सकती। ये सभी चीजें वहां प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहेंगी। यह मेरा दृढ़ तथा सुनिश्चित विश्वास है।

ईश्वर को मत भूलो। सदा उसका स्मरण करो। वासना, काम, लोभ, क्रोध लोलुपता, मोह तथा अभिमान, ये शत्रु तुम्हारे हृदय में ही घात के लिये तत्पर छिपे हैं। भगवान से सहायता लो और उनसे युद्ध करने के लिये उनको जीतने के लिये तैयार हो जाओ। और इस प्रकार स्वर्ग के राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त करो, जो तुम्हारे हृदय में पहले से ही विद्यमान है।

उपसंहार

मैंने गीता के कुछ प्रमुख उपदेशों को तुम्हारे सामने रखने का प्रयास किया है। हम कुछ ठोस लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। को लाभः ? आत्मावगमो हि यो वै। सच्चा लाभ क्या है ? वह है अपने स्वयं की आत्मा का ज्ञान। अपनी आत्मा को जानो और मुक्त हो जाओ। यही हमारी जीवन का लक्ष्य है। संसार प्रलोभनों से भरा पड़ा है। हम प्रलोभनों के जाल में जकड़ लिये जाते हैं। और नष्ट हो जाते हैं। प्रलोभनों का सामना करने के लिये हममें असाधारण बल होना चाहिए। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः यह आत्मा दुर्बलों के लिये नहीं है।

अर्जुन लड़ने से हिचकिचा रहा था। वह कितना कमजोर और डरपोक था। परन्तु कृष्ण ने उसे बलवान बना दिया। सुनो, अर्जुन क्या घोषणा कर रहा है:-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मायाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव।।

हे भगवान! आपकी कृपा से मेरा सारा मोह और अज्ञान नष्ट हो गया है। मुझे अपनी वास्तविक प्रकृति का ज्ञान हो गया है। सभी शंकाएं नष्ट हो गई हैं और मैं आत्मा में पूर्णतया स्थित हो गया हूं। मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिये तैयार हूं।

यदि हमें सच्ची लगन और निष्ठा हो, तो गीता हमें मुक्ति की अवस्था तक ले जायेंगे। गीता में कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग- इन सभी मार्गों का बड़ा ही मधुर

समन्वय हुआ है। ये सभी आत्मा की उन्नति के लिये परम आवश्यक है। हमारे कष्टों और चिन्ताओं का कारण हमारा अज्ञान है। अज्ञान का नाश केवल ज्ञान से ही हो सकता है। ज्ञान का प्रकाश केवल पवित्र मन से ही प्रकाशित होता है। ये सभी योग, मन को पवित्र करने के उपाय हैं। ज्ञान दो प्रकार का होता है। सैद्धान्तिक और व्यवहारिक- परोक्ष और अपरोक्ष। परोक्षसाधन है और अपरोक्ष साध्य हैं हमें अपने जीवन को उस प्रकार ढालना और आकृति देना चाहिए, जिस प्रकार गीता हमसे अपेक्षा करती है। घमंडी और अंहकारी मत बनो। अहिंसा के नियमों का पालन करो, प्रसन्नचित्त से सभी दुःखों को सहो, सीधे-सरल बनो, सच्चे गुरु की खोज करो और अपने संपूर्ण हृदय से उनकी सेवा करो। अपने शरीर और मन को पवित्र रखो। संशय में मत पड़ो, दृढ़निश्चयी बनो। मन पर नियंत्रण रखने का अभ्यास करो। इन्द्रिय सुखों के पीछे मत दौड़ो। देहाभिमान से ऊपर उठो। अपनी आँखे खोलो और जन्म, मृत्यु, रोग, वृद्धावस्था आदि जीवन के तथ्यों का अवलोकन करो। संसार का अध्ययन करो और अपने तथा कथित घर, पत्नी तथा बच्चों में आसक्त मत होओ। चाहे सुख होवे या दुःख-दोनों का स्वागत करो। साहस मत खोओ, सदा स्थिर और शांत रहो। उस ईश्वर में श्रद्धा और भक्ति रखो। शान्त और एकान्त स्थान का आश्रय लो। सांसारिक विचारधारा रखने वाले लोगों में मत घुलो-मिलो। गीता, उपनिषद आदि पुस्तकों का अध्ययन करो और उनके सच्चे भाव समझने का प्रयत्न करो।

केवल इसी प्रकार तुम उस परमात्मा का साक्षात्कार कर सकोगे, जो आत्मा है। यह अपरोक्ष ज्ञान है।

तुम भगवान में उसी प्रकार लीन हो जाओ, जिस प्रकार नमक की गुड़िया समुद्र में घुलकर एकाकार हो जाती है।

ॐ तत् सत् ।

*